रवैये में परिवर्तन

अरुणा वी. प्रसाद

> "अन्य लोगों की हर वह बात जिससे हम खीझते हैं,
> हमें स्वयं को समझने की ओर ले जा सकती है।"
>
> - कार्ल जुंग

जुंग के कथन पर जाएँ तो लगता है कि जीवन हमें एक से अधिक तरह से चुनौती देता है और हमें स्वयं पर सोचने–विचारने का मौका भी। इस बात को कुछ गहराई में समझने के मकसद से एक उदाहरण लेते हैं।

अगस्त 2012 में रुद्रपुर,उत्तराखण्ड के अज़ीम प्रेमजी स्कूल में एक 9 वर्षीय बच्ची 15 वयस्कों के जीवन में चली आई। स्कूल में प्रवेश के समय उसके संक्षिप्त परिचय में निम्न दो बातें शामिल थीं –

- स्कूल और उसकी आवश्यकताओं तथा माँगों के बारे में बहुत ही कम समझ और चेतना।
- चिकित्सकीय तौर पर कम स्तर की बुद्धिलब्धि (आइ. क्यू) वाले बच्चे के रूप में पहचान।

उसे 'शिक्षा का अधिकार' से सम्बद्ध मानकों के आधार पर स्कूल में लिया गया था। शीघ्र ही सबको एहसास होने लगा कि

- नियमों, अपेक्षाओं और नित्यचर्या का उसके लिए कुछ महत्त्व नहीं था।
- वह शैक्षणिक रूप में ही नहीं, समाज और व्यवहार के स्तर पर भी चुनौती की अवस्था में रहती थी।
- अपने समकक्षों के साथ व्यवहार में वह सुसंस्कृत और परिष्कृत नहीं थी।
- वह उच्च आवेग में रहती थी।
- कभी–कभी आक्रामक हो जाती थी।
- एक स्थान पर नहीं बैठ सकती थी।
- औरों से वस्तुएँ छीनती थी।
- कहीं भी लेट जाती थी और शौच के लिए पूरी तरह से प्रशिक्षित नहीं थी।
- बार–बार निर्देश दिए जाने पर ही उन्हें याद रख पाती और समझ पाती थी।

मैं सोच में पड़ गई। क्या वयस्क के तौर पर हम जानते हैं कि वह क्या है जिसकी आवश्यकता कुछ भी (अकादमिक) 'सीखने' के लिए होती है? यह विचार मेरे मन में इसलिए आया क्योंकि हम बच्चे के विकास के चरणों को पहले से मानकर चलते हैं। जिन बच्चों को सीखने में समय लगता है या जिनमें अलग तरह की क्षमताएँ होती हैं, उनसे कैसा व्यवहार किया जाए, उन्हें कैसे सम्भाला जाए, यह हमारी समझ में नहीं आता। कोई बच्चा बाकी सबसे अलग हो तो हम क्या करें? क्या हम ऐसे तरीकों से शिक्षण कर सकते हैं कि वह सीख पाए? उसे वह सब मुहैया करवा सकते हैं जिससे वह स्वतन्त्र महसूस कर पाए?

यह स्वाभाविक–सी बात लगती है कि प्रत्येक स्कूल में एक विशेषज्ञ–शिक्षक हो। लेकिन असलियत इससे कोसों दूर है। 'सामान्य' बच्चों को पढ़ाने वाले शिक्षकों से ही आशा की जाती है कि वे 'विशेष आवश्यकताओं' वाले बच्चों को भी पढ़ाएँ जबकि यह तो हम समझ ही सकते हैं कि उनमें ऐसा कर पाने की विशेषज्ञता नहीं होती। बल्कि ऐसे बच्चों के साथ व्यवहार के सन्दर्भ में इन शिक्षकों के रवैये को ध्यान में रखें तो हम देखते हैं कि वे समझ ही नहीं पाते कि उन्हें क्या करना है। और इस बात में वे किसी भी अन्य वयस्क से अलग नहीं हैं। यह इसलिए भी केन्द्र में आ जाता है कि उनका 'पेशा' उनसे माँग रखता है कि वे सबको पढ़ाएँ – विभिन्न बच्चों के सीखने के स्तर या क्षमताओं में अन्तर के बावजूद।

यह कोई सामान्य, आसान स्थिति नहीं थी। शिक्षकों को समझ नहीं आ रहा था कि वे क्या करें। मैं भी सोच में थी कि उन शिक्षकों को किस प्रकार लैस करूँ जिन्होंने कभी भी अलग माँग और आवश्यकता वाले बच्चों को नहीं पढ़ाया था। मुझे यह भी मालूम था कि इस स्थिति को लेकर उनमें एक तरह की नाराजगी थी हालाँकि खुले तौर पर उसे व्यक्त नहीं किया जा रहा था। शिक्षकों को उस बच्ची को सम्भालने के लिए लैस करना महत्त्वपूर्ण और आवश्यक था।

हमने कुछ बैठकें कीं। तय हुआ कि कोई एक नहीं बल्कि सब शिक्षक उस बच्ची के लिए उत्तरदायी होंगे। इसे पूरी टीम का प्रयास बनना होगा। कोई एक व्यक्ति माता–पिता का सम्पर्क–सूत्र रहे, इसके लिए उनमें से एक को कक्षा का मुख्य शिक्षक मान लिया गया। यह भी स्पष्ट था कि कुछ सामान्य रणनीतियाँ तो बनानी होंगी। इनमें से कुछ इस प्रकार थीं –

1. हिदायतें साधारण–सामान्य, स्पष्ट और संक्षिप्त हों।
2. सब शिक्षक बच्ची के समस्यागत व्यवहार के उन पहलुओं को प्राथमिकता से चिह्नित करें जिनकी ओर तुरन्त ध्यान देना आवश्यक है।
3. सुनिश्चित किया जाए कि दृष्टिकोणों में सामंजस्य, निरन्तरता और समानता के लिए माँ–बाप को सूचना–सम्पर्क में रखा जाए।
4. बच्ची को बंगाली ही आती थी। दीदी (सहायिका) हम सबकी अनुवादक का काम करेंगी। तय हुआ कि वे ही बच्ची की स्वच्छता सम्बन्धी और अन्य ऐसी आवश्यकताएँ पूरा करने का दायित्व भी लें।
5. यह भी तय हुआ कि शैक्षणिक काम 'मुख्य केन्द्र–बिन्दु' नहीं रहेगा। यह बात माँ–बाप को भी बता दी गई।
6. कक्षा के मुख्य शिक्षक को हर बात के बारे में जानकारी रहे और वह माँ–बाप से भी सम्पर्क में रहे।

मुझे मालूम था कि ये रणनीतियाँ स्वयं में बहुत सहायक नहीं होंगी। लेकिन फिर भी मैंने स्थिति को ऐसे ही चलने दिया क्योंकि मैं यह भी जानती थी कि शिक्षकों को – और बच्ची को भी – सब कुछ समझने के लिए समय चाहिए था।

नवम्बर में जब मैं वहाँ गई तो मैंने पाया कि सब ठीक नहीं था। आशा के अनुरूप ही शिक्षक निराश थे और बच्ची को सम्भालने में असमर्थ से लग रहे थे। मैंने उनसे बच्ची को सम्भालने के अब तक के अनुभव लिखने का आग्रह किया।

जो निकलकर आया

"मैं हैरत में था कि उसे प्रवेश दे दिया गया। मैडम चूक गई हैं। बच्ची को विशेष स्कूल में भेज दिया जाना चाहिए था। मुझे एहसास हुआ कि बच्ची का दोष नहीं है कि उसका मस्तिष्क विकसित नहीं है। लेकिन इस स्कूल में आने के बाद मैं उसके व्यवहार में परिवर्तन देख रहा हूँ।"

"जब वह यहाँ आई तो मुझे लगा कि वह अन्य बच्चों के साथ कैसे घुल–मिल पाएगी? वह तो अपनी आवश्यकताओं को भी अभिव्यक्त नहीं कर पाती। लेकिन अब वह व्यक्त कर पाती है कि उसे क्या चाहिए। वह हमें समझती है। मैं भी उसे समझती हूँ। समय के साथ वह ठीक हो जाएगी।"

"वह अच्छे–बुरे में अन्तर नहीं कर पाती। उसे यह ज्ञान भी नहीं है कि वह जो कर रही है, क्यों कर रही है। कोई उपयुक्त काम दिया जाता है तो कुछ देर उसके साथ बैठी रहती है। 'खाना व्यर्थ न करो', 'थाली धोओ' आदि जैसे निर्देशों पर ही कुछ करती है। मेरे विचार से वह सही दिशा में जा रही है, उसे घर जैसा ही प्यार मिल रहा है। यहाँ आने के बाद उसने बहुत कुछ सीखा है। वह प्रसन्न है। मैं प्रसन्न हूँ।"

"शुरू में मैं उससे डरती थी। मुझे उससे कुछ दूरी रखने की आवश्यकता महसूस हुई। मैं उसे भगा भी देती थी। एक बार वह फूल लाई और इशारे से मुझसे कहा कि मैं उन्हें अपने बालों में लगा लूँ। मुझे महसूस हुआ कि मैं शायद ठीक नहीं करती रही थी। मैं उससे बात करने लगी। अब जब मैं किसी के स्थान पर कक्षा लेने जाती तो वह मुझे देखकर प्रसन्न होती थी। मुझे लगा कि यह उसकी इच्छा तो नहीं थी कि उसका जन्म ऐसा हो! "

"यह एक नया अनुभव था। वह अन्य बच्चों को देखने लगी और उनका अनुकरण करने लगी।"

"मुझे लगा कि उसे कुछ मानसिक समस्या है। इन तीन महीनों में उसमें कोई विशेष सुधार नहीं हुआ है। उसने शिक्षकों और बच्चों को बहुत तंग किया है।"

"शुरू में तो मैं खीझ जाती थी, क्रोध में आ जाती थी। मुझे लगता था कि उसे काम दिया जाना चाहिए, मैं उसे अपने साथ बिठाती। मैंने उसमें सुधार देखा। एक दिन उसने अँग्रेजी में कहा, 'मे आइ कम इन मैडम?' मुझे खुशी हुई।"

"शुरू में तो वह अपनी माँ के बिना बैठती नहीं थी। लेकिन अब बैठती है। एक–दो बच्चे उसके मित्र बने हैं, उसे स्कूल

आना अच्छा लगता है, कभी–कभी शिक्षकों को सुनती है। हम उस पर और ध्यान दें तो उसमें सुधार आएगा।"

"मुझे लगता है वह मानसिक तौर पर बीमार है। हम उसे सामान्य बच्चों के साथ नहीं पढ़ा सकते।"

"जब उसने यहाँ प्रवेश पाया था, तब से अब में बहुत अन्तर है। वह हमें तो नहीं मारती, फिर वह अपने सहपाठियों के साथ ऐसा क्यों करती है? हो सकता है कि वे बहुत कुछ उसके साथ साझा न करते हों!"

"उसने अपने मित्रों की बात सुनना शुरू कर दिया है। यदि वे उसे कहते हैं, 'मत करो', तो वह नहीं करती। उस पर ध्यान देने की आवश्यकता है। उसमें सामाजिक स्तर पर सुधार हुआ है और वह लोगों के साथ घुलने–मिलने की कोशिश कर रही है।"

इन विचारों से स्पष्ट था कि कुछ को छोड़कर बाकी सबको उसमें बदलाव दिखाई दे रहा था। यह विशेष तौर से इस सन्दर्भ में सही था कि उन्होंने बच्ची को उसी रूप–स्वरूप में स्वीकार करना शुरू कर दिया था जिसमें वह थी, और इसीलिए उनका सम्बन्ध भी उसके साथ बनने लगा था। कक्षा–3 और उससे ऊपर के बच्चों से बात की गई और उन्हें उस बच्ची के प्रति संवेदनशील बनाया गया। उन्हें यह भी समझाया गया कि वे उसके आक्रामक होने पर या सामाजिक तौर पर अस्वीकार्य व्यवहार करने पर उसे 'नहीं' कहें न कि उसे छेड़ें या मारें।

प्रशासन का दायित्व सम्भालने वाले व्यक्ति और प्राचार्य ने भी उस बच्ची से बातचीत करना शुरू कर दिया और उसे वर्णमाला सिखाना शुरू किया। बच्ची ने रंग करने में कुछ दिलचस्पी दिखानी प्रारम्भ कर दी थी। कुछ वर्कशीट (रंगने के लिए, वर्णमाला लिखने के लिए आदि) तैयार की गईं और मौका पड़ने पर इस्तेमाल के लिए हाथ में रख ली गईं। शिक्षकों से कहा गया कि वह जब भी उनके कक्षा–कक्ष में आए तो यह उसे दे दी जाएँ। कुछ शीट कभी–कभी उसके घर भी भेज दी जाती थीं।

शैक्षणिक वर्ष के अन्त पर रिपोर्ट–कार्ड के रूप में एक और चुनौती खड़ी हो गई। उसमें क्या दर्ज किया जाए? टीम ने मिलकर सकारात्मक बातों और बेहतरी के पक्षों पर विचार किया।

निम्नलिखित बिन्दु निकलकर आए –

- बच्ची ने इधर–उधर घूमना बन्द कर दिया है।
- उसने किताबें देखना और प्रश्न पूछना शुरू कर दिया है।
- वह अब सामान्य निर्देशों का पालन करने लगी है।
- वह अपने समकक्षों का अनुकरण करती है और गाने का प्रयास करती है।
- वह शौच के लिए प्रशिक्षित हो गई है – आदि, आदि।

चिन्ता की बातें

- अब भी कभी–कभी आक्रामक हो जाती है।
- कागज फाड़ देती है।

सबके लिए हैरत की बात थी कि 29 बातें सकारात्मक और केवल 10 चिन्ता की थीं!

यह देखकर अच्छा लगता था कि बच्ची के माता–पिता अभिभावक–शिक्षक बैठक में आते थे। वे बोले, "हम प्रसन्न हैं कि हमारी बच्ची को स्कूल आना अच्छा लगता है, वह व्यस्त रहती है, किताबें खोलकर देखती है, स्कूल में होने वाली बातें हमारे साथ साझा करती है। सबसे बढ़कर, उसके साथ एक इन्सान की तरह व्यवहार किया जाता है और उसके मित्र भी हैं।"

यह तय है कि शिक्षकों को कई बातें स्वयं से समझने के लिए समय और मौके की आवश्यकता थी। जब वे ऐसा कर पाए, तो उन्होंने उस बच्ची को स्वीकार भी कर लिया। अब वे उसे सम्भाल पाने के लिए अपनी रणनीतियाँ बना पा रहे हैं। मुझे लगता है कि इसके चलते धीरे–धीरे बच्ची और शिक्षक, दोनों स्वतन्त्र हो पाएँगे।

अरुणा वी. प्रसाद अज़ीम प्रेमजी स्कूलों की केन्द्रीय टीम में हैं। फाउण्डेशन में आने से पहले वे हैदराबाद के इण्डस इण्टरनैश्नल स्कूल के काउंसलिंग एण्ड स्पेशल एजुकेशन नीड्स विभाग की अध्यक्ष थीं – पढ़ाती भी थीं। उससे पहले वे चेन्नई में "द स्कूल" (कृष्णमूर्ति फाउण्डेशन ऑफ इण्डिया) में पढ़ाती थीं – वहाँ वे मिश्रित आयु–समूह प्रोग्राम को मार्गदर्शन देने वाली टीम का हिस्सा थीं। बाद में वे आन्ध्रप्रदेश में मदनपल्ले नगर के पास स्थित ऋषि वैली स्कूल में रहीं जहाँ उन्होंने धीमी गति से सीखने वालों के लिए गतिविधि केन्द्र की शुरुआत की। उन्होंने कुछ अर्सा गुड़गाँव के पाथ्वेज़ और जी.डी.गोयनका वर्ल्ड स्कूल में भी काम किया। परामर्शदाता और शिक्षक के रूप में लम्बे समय से वे शिक्षकों और विद्यार्थियों के साथ कई तरह की गतिविधियों में शामिल रही हैं। उनसे aruna.v@azimpremjifoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है।
अनुवाद: रमणीक मोहन